International Journal of Education and Science Research Review

Volume-5, Issue-4 July 2018

E-ISSN 2348-6457

P-ISSN 2349-1817

www.ijesrr.org

Email- editor@ijesrr.org

सचिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय के काव्य में सामाजिक एवं राजनीतिक यथार्थ

दामोदर लाल मीना

व्याख्याता हिन्दी राजकीय महाविद्यालय

करौली राजस्थान

सार

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय हिंदी साहित्य के मूर्धन्य कवियों में से एक हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य को अपने नूतन विचार–दृष्टि के साथ नई दिशा दी। एक कवि, लेखक, उपन्यासकार, निबंधकार, संपादक के रूप में अपनी सर्जनात्मक क्षमता से हिंदी साहित्य को विकसित किया। अज्ञेय का रचना – संसार अथाह है और इसकी गहराई में उतरकर ही उनके विचारों को समझा जा सकता है। उनके द्वारा प्रतिपादित ग्रंथ तारसप्तक से उनके विचारों की नवीनता दिखाई देती है। इसमें उन्होंने प्रयोग पर बल दिया जो उनके विचारों में नई दृष्टि का परिचायक है। उन्होंने कविता में छायावादी भावप्रवणता के स्थान पर नए विचारों की प्रतिष्ठा की। अज्ञेय के विचार एवं दृष्टि को परखने के लिए सबसे पहले मैंने उनके पारिवारिक परिवेश का अध्ययन किया। परिवार में ही सर्वप्रथम एक शिशु के संस्कार के बीज पड़ते हैं। अज्ञेय माता–पिता, और भाई–बहनों के स्नेहिल तो थे ही परंतु पिता के सानिध्य में अधिक रहे। परिवार एक शिशु की पहली पाठशाला है जहां उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इस दृष्टि से देखें तो अज्ञेय की प्रथम पाठशाला प्रकृति रही ।

अज्ञेय के काव्य में व्यष्टि, समष्टि तथा उनके मध्य संबंधों को लेकर आधुनिक विचारों की अभिव्यक्ति हुई है। वे व्यक्ति और समाज की अवधारणाओं तथा उनके मध्य संबंधों की गहरी समझ रखते हैं। अज्ञेय से पूर्व मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित प्रगतिवादी काव्य में केवल समष्टि को महत्व दिया गया। व्यक्ति को वह स्थान नहीं मिला जो उसे मिलना चाहिए था। अज्ञेय का महत्त्व इसी बात में है कि उन्होंने व्यष्टि को समष्टि के स्थान पर अपनी कविता का आधार बनाया। ऐसा नहीं है कि अज्ञेय की कविता में समष्टि का कोई स्थान नहीं है वरन वह व्यष्टि को समाज का अंग मानते हुए व्यक्ति की गरिमा को महत्त्व देते हैं। उनके काव्य के आरंभ से ही उनकी व्यक्तिवादी दृष्टि दिखाई देती है। उनकी अधिकांश कविताएं व्यक्ति के ताने–बाने के साथ साथ प्रस्तुत हुई हैं, इसलिए अज्ञेय पर घोर व्यक्तिवादी का आरोप भी लगता रहा ।

अज्ञेय का कथन है कि मैंने तो अपने आप को व्यक्तिवादी कभी नहीं माना। लेकिन जो अपने आप को समाजवादी कहते हैं और मेरा विरोध करना चाहते हैं, क्योंकि अपने आप को समाजवादी कहते हैं, इसलिए मुझको कुछ इतर बनाना उनके लिए आवश्यक हो जाता है और इसीलिए वे मुझे व्यक्तिवादी कहते हैं।

भूमिका

वास्तव में अज्ञेय की कविता का केंद्र व्यक्ति अवश्य है परंतु वे उसे समाज से अलग करके नहीं देखते। अज्ञेय की व्यष्टि, समष्टि और उनके अंतर्संबंधों को समझने से पूर्व मैं सर्वप्रथम व्यष्टि एवं समष्टि का अर्थ स्पष्ट करना उचित समझती हूं– डॉ. हरदेव बाहरी के अनुसार – व्यष्टि का शब्दकोश गत अर्थ है– समष्टि का सदस्य या व्यक्ति एवं समष्टि का अर्थ है – १ – सामूहिकता २– समवेत सत्ता । ३ अंग्रेजी शब्दकोश में व्यक्ति को व्यक्तिकहते हैं जिसका शाब्दिक अर्थ है– एक व्यक्तिगत इंसान तथा समाज को अंग्रेजी में– समाज कहते हैं जिसका तात्पर्य है– एक व्यवस्थित समुदाय में एक साथ रहने वाले लोग। – एक देश या क्षेत्र में रहने वाले लोगों का एक समुदाय और साझा रीति–रिवाज, कानून और संगठन इन शब्दकोशगत अर्थ के आधार पर हम कह सकते हैं कि जब व्यक्तियों का एक समुदाय आपस में मिलकर एक स्थान पर रहता है और अपने रीति–रिवाजों, क्रिया–कलापों, प्रथाओं आदि का एक–दूसरे के साथ व्यवहार करता है तब एक समाज का निर्माण होता है। दोनों शब्दों के अर्थ स्पष्टीकरण से ज्ञात होता है कि व्यक्ति एवं समाज के में परस्परता का संबंध है। बिना व्यक्ति के समाज और समाज के बिना व्यक्ति को समझा नहीं जा सकता । व्यक्ति समाज में अपनी पहचान पाता है। वह समाज का आवश्यक अंग है। प्रगतिशील काव्य में समाज को इतनी महत्ता दी कि व्यक्ति उपेक्षित हो गया। प्रयोगवादी कवि अज्ञेय ने इस उपेक्षित व्यक्ति के अंतर्जगत की यात्रा कर उसकी प्रतिष्ठा काव्य में की। यह कहने का तात्पर्य नहीं है कि अज्ञेय से पूर्व व्यक्ति को कविता में स्थान नहीं मिला। निराला की भिक्षुक, तोड़ती पत्थर, विधवा आदि मानवीय संवेदनाओं को प्रकट करने वाली कविताएं थीं जिसमें व्यक्ति की पीड़ा को समझने का प्रयत्न हुआ।

परंतु अज्ञेय ने व्यक्ति के संत्रास को अपनी पीड़ा समझी और काव्य में व्यक्ति के प्रति एक यथार्थवादी दृ ष्टिकोण का सूत्रपात हुआ । अज्ञेय की वैयक्तिकता फ्रायडीय और अस्तित्ववादी प्रभावों से भी दृष्टि ग्रहण करती है। उनके वैयक्तिक विचारों में अपने पूर्ववर्ती विचारों से अधिक मनोवैज्ञानिकता दिखाई देती है। कहना न होगा कि उन्होंने भोगे हुए सत्य को अपनी कविता में उकेरा और उसी की छाया में उनकी वैयक्तिक दृष्टि निर्मित हुई। इस संबंध में उनके वैयक्तिक दृष्टिकोण को समझना समीचीन होगा ।

मानव वह इकाई है जो समाज का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसका कारण यह है कि मानव एक विवेक शील प्राणी है जिसके कारण वह सभी प्राणियों में सबसे श्रेष्ठ प्राणी कहलाता है। वह अपने बौद्धिक क्षमता के आधार पर उसने इतनी प्रगति की। आदि मानव से सभ्य मानव के रूप में परिवर्तन इसी बुद्धि के कारण संभव हो पाया। वर्तमान में व्यक्ति का जो रूप हमारे समक्ष है, वह आश्चर्य में डालने वाला है। यदि व्यक्ति का आदि – मानव से विकास देखें तो आज के विकसित मानव का रूप अदभुत ही कहा जाएगा। आदिमानव से सभ्य विकसित व्यक्ति के इतिहास में उसने अपनी प्रयोगशील बुद्धि और ज्ञानार्जन से न केवल स्वयं को समृद्ध किया बल्कि अपने पूरे समाज को उन्नति का मार्ग दिखाया। यह उसकी सोचने और वैचारिक दृष्टि का परिणाम है कि आज वह इस उन्नत और भौतिक साधनों से सम्पन्न समाज का अंग है। इस भौतिकता ने व्यक्ति को जहां समृद्धि का मार्ग दिखाया वहीं उसके लिए परेशानियों के द्वार भी खोले। इस विकसित समाज में व्यक्ति सुख के साधनों में कहीं खो गया है। व्यक्ति के इन्हीं नाना प्रकार की स्थितियों को कवियों ने विभिन्न दृष्टिकोण से देखा है। अज्ञेय की कविताओं में भी व्यक्ति के संबंध में उनके विभिन्न विचारों की अभिव्यक्ति हुई है। अज्ञेय के काव्य में व्यक्तिपरक दृष्टि दिखाई देती है। वे मानव को श्रेष्ठ प्राणी का दर्जा देते हैं क्योंकि वे व्यक्ति को मूल्यों का स्रष्टा मानते हैं। व्यक्ति द्वारा ही मूल्यों को बनाया जाता है। उनका कथन है कि मनुष्य मूल्यों की सृष्टि करता है। सिर्फ पहचानता नहीं है कि मूल्य है, वह रचता है उन मूल्यों को निरंतर उसके मूल्य भी विकसित होते जाते हैं जैसे वह विकसित होता जाता है। एक मूल्य के बदले वह उस बड़े या व्यापक या ज्यादा बड़े समाज के लिए कल्याणकारी लिए कल्याणकारी मूल्य की अवधारणा करता है। अज्ञेय के इस कथन से ज्ञात होता है कि वे व्यक्ति को सृष्टि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाई मानते हैं। व्यक्ति अपने द्वारा निर्मित श्रेष्ठ मूल्यों की स्थापना कर एक उच्च समाज की रचना करता है। उनकी दृष्टि में व्यक्ति ईश्वर से कम नहीं। रमेश चंद्र शाह का मत है– ध्यान देने की बात यह है कि किस तरह अज्ञेय के काव्य में यह मूल्य बोध और इसका मानवनिष्ठ (हयूमिनिस्ट) अभिप्राय क्रमशरू एक प्रभासिक्त पावनता के बोध से उद्दीप्त होता जाता है। इस संबंध में अज्ञेय की यह कविता दृष्टव्य है।

अज्ञेय का अकेले मानव में भी ईश्वर जैसी शक्तियों में विश्वास हैं। इससे प्रतीत होता है कि वे व्यक्ति के सामर्थ्य के प्रति आस्थावान हैं। इस संबंध में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का कथन है कि वे मानव शक्ति को अंततरू पूज्य मानते हैं। उसी के प्रति नमित और अर्पित होते हैं । व्यक्ति के स्वतंत्र अस्तित्व की स्थापना अज्ञेय के काव्य में दिखाई देती है। उनके व्यक्ति के विकास के लिए उसके स्वतंत्र अस्तित्व को महत्त्व देते हैं। अज्ञेय की व्यक्ति स्वातंत्र्य की प्रतिष्ठा उनके काव्य की प्रेरणा है। डॉ. केदार शर्मा का मत है कि अज्ञेय के सम्पूर्ण मूल्य चिंतन का केंद्र स्वतन्त्रता है। उनकी दृष्टि में यह एक चरम मूल्य है, सभी मूल्यों का बीज

मूल्य है। और मूल्यों का मूल्य होने की कसौटी है। १२ जब तक व्यक्ति अपने अस्तित्व के स्वतन्त्रता का अनुभव नहीं करता तब तक उसका विकास संभव नहीं है। इस संबंध में अज्ञेय का कथन है– मनुष्य के विकास की, पशु से मनुष्य तक के विकास की और मनुष्य की मनुष्य के रूप में विकास की, एक बहुत बड़ी प्रवृत्ति मैं इस स्वतन्त्रता की पहचान और खोज मानता हूं। मनुष्य ही पहला जीव है जिसके लिए स्वतन्त्रता संभव है और जो यह पहचानता है कि मैं स्वतंत्र हो सकता हूं। एक स्वतंत्र व्यक्ति ही अपनी स्वाधीनता का अनुभव कर सकता है। वह प्रकृति के साथ स्व की अनुभूति करता है।

उनकी कविता में व्यक्ति की इसी स्वतन्त्रता की अभिव्यक्ति हुई है।यह उसकी स्वतन्त्रता ही है कि वह प्रकृ ति के साथ स्वयं को जोड़ लेता है और उसी के साथ बहता, गाता, थरथराता, गलता, जीर्ण होता नव जीवन का अनुभव करता है। जीवन के इस अनुभूति को स्वाधीन व्यक्ति ही अनभूत करता है। स्वाधीनता को परिभाषित करते हुए अज्ञेय कहते हैं कि स्वाधीनता एक ऐसी चीज है जो निरंतर आविष्कार, शोध और संघर्ष मांगती है, यहां तक कि उस शोध और संघर्ष को ही, स्वाधीनता की अंतहीन ललक को ही स्वाधीनता का सार सत्त्व कह सकते हैं। इस तरह व्यक्ति– स्वातन्त्र्य को अज्ञेय व्यक्ति के लिए अनिवार्य मानते हैं। इस स्वाधीनता के अभाव में व्यक्ति अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं कर पाता है। व्यक्ति अपनी स्वाधीनता के कारण ही अन्य प्राणियों या पशुओं से अपना विभेद कर पाता है। वह अपने मन के विचारों को अभिव्यक्त करने की क्षमता रखता है। यह उसकी स्वाधीनता का सबसे बड़ा प्रमाण है।

सचिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय के काव्य में सामाजिक एवं राजनीतिक यथार्थ

अज्ञेय व्यक्ति को महत्त्व देते हुए समाज की ओर अग्रसर होते हैं। अज्ञेय की समाज के प्रति दृष्टि प्रगतिवादी दृष्टि से भिन्न रही। प्रगतिवाद ने समाज के माध्यम से व्यक्ति को देखा। अज्ञेय ने उसी समाज को व्यक्ति के द्वारा जाना और परखा। उनकी आधुनिक और प्रयोगवादी दृष्टि ने समाज को भी नई दृष्टि से समझने की चेष्टा की। उदाहरण के रूप में देखें तो व्यक्ति को अपने तीज–त्योहार, धार्मिक उत्सव और अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक दूसरे की सहायता लेनी पड़ती है। बिना एक दूसरे के सहयोग के व्यक्ति अपनी मूलभूत जरूरतें भी पूरी करने में असमर्थ होता है। ऐसा इसलिए है कि व्यक्ति समाज में रहने वाला प्राणी है। वह समाज के बिना अपना जीवन व्यतीत नहीं कर सकता क्योंकि इसी में रहकर वह एक–दूसरे से संबंध बनाता है, संस्कृति का निर्माण करता है, परम्पराओं का निर्वहन करता है। वस्तुतरू व्यक्ति के समूह में रहने की प्रवृत्ति को समाज के नाम से जाना जाता है।

व्यक्तियों के मध्य आपस में अन्तः संबंध और अंतः क्रियाएं होती हैं जिसके फलस्वरूप समाज बनता है। अतरू समाज व्यक्तियों से ही बनता है और वह समाज में रहकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए एक दूसरे के साथ रहकर अपना जीवन यापन करता है। अज्ञेय की दृष्टि में व्यक्ति की सत्ता अधिक महत्वपूर्ण है परंतु फिर भी वे समाज से परे नहीं है। वे समाज की महत्ता को नकार कर व्यक्ति को स्वछंद नहीं मानते। उनके अकेले, एकांतिक जीवन ने उन्हें अवश्य ही एक नितांत वैयक्तिक दृष्टि दी लेकिन इसी अकेलेपन के जीवन ने उन्हें समाज की गंभीर दृष्टि दी।

समाज की इयत्ता अंततोगत्वा समाजत्व की भावना पर आश्रित है यदि किसी कारण हम अपनी प्रवृत्ति से सामाजिक संबंध नहीं महसूस करते, तो वह हमारा समाज नहीं है, यदि किसी दूसरी प्रवृत्ति से वैसा संबंध मानते हैं, तो वह हमारा समाज है।४० अज्ञेय का यह कथन उनके समाज के विषय में विचार को प्रकट करता है। उनका मत है कि समाज से हमारा संबंध अपनेपन का है । अगर जिस समाज में हम रहते हैं उसे हम एक लगाव नहीं रखते तो उसे समाज कहने में संकोच होता है। आशय यह है कि समाज में रहकर व्यक्ति समाज से अपना घनिष्ट संबंध जोड़ता है। समाज जहां व्यक्ति की आवश्यकता पूरी करता है वहीं वह उसके संस्कारों का परिमार्जन भी करता है। इस समाज के कारण ही व्यक्ति अपनी पहचान बनाता है और पहचाना भी जाता है। इसी से संबन्धित क्रिस्टोफर कॉडवेल का मत है कि जब हम मनुष्य की बात करते हैं तो हमारा आशय वंशजात या व्यक्ति से अर्थात जिस रूप में वह पैदा होता है उस अंतरू वृत्ति वाले मनुष्य से होता है जिसे यदि उपेक्षित छोड़ दिया जाए तो बढ़कर एक मूक पशु बन सकता है, परंतु इसके बजाय वह एक खास किस्म के समाज में बढ़कर एक खास किस्म का मनुष्य– यूनानी, ऐज्तेक, लंदनवासी बनता है। हमें यह नहीं समझना चाहिए कि वंशजात मनुष्य पूरी तरह लोंदा होता है। इसमें कुछ निश्चित अंतः वृत्तियां और क्षमताएं होती हैं जो इसकी ऊर्जा और बेचौनी का स्रोत होती हैं। सभी वंशजात एक जैसे भी नहीं होते, मनुष्यों में जन्मजात लक्षणों के कारण परस्पर भिन्नता होती है। परंतु समाज इस प्रकार की जन्मजात वैयक्तिकता के विरुद्ध नहीं होताय उल्टे सभ्यता के विकास के साथ जो विभेदीकरण उत्पन्न होता है वह मनुष्यों की विशिष्ट विशेषताओं को फलीभूत करने का साधन बनता है । ४६ क्रिस्टोफर कॉडवेल का यह कथन समाज का व्यक्ति के लिए महत्त्व व्यक्त करता है। समष्टि की इयत्ता व्यष्टि के लिए अपना महत्त्व ही नहीं रखती बल्कि उसके लिए आवश्यक भी है। व्यष्टि इसी समष्टि का हिस्सा है और यहीं वह अपना व्यक्तित्व बनाता है। अज्ञेय की कविताओं में समष्टि के महत्त्व की प्रतिष्ठा इस बात का संकेत है कि वे समाज को व्यक्ति लिए आवश्यक मानते हैं। नदी के द्वीप कविता व्यक्ति और समाज के

संबंधों को अभिव्यक्त करने वाली कविता है। इसमें द्वीप उस व्यक्ति का प्रतीक है जो समाज की पंक्ति में सम्मिलित होना चाहता है।

अज्ञेय ने व्यक्ति को गर्व भरा और मदमाता माना है फिर भी उसे समाज से अलग नहीं रखा। यहां व्यक्ति और समाज की अभिव्यक्ति आधुनिक संदर्भ में हुई है। व्यक्ति की निजता को सुरक्षित रखते हुए समाज को सौंपा जाना अज्ञेय की नई विचार दृष्टि का प्रतीक है। अज्ञेय का मत है कि समाज हमें गढ़ने का कार्य करता है। तात्पर्य है कि समाज की गोद में व्यक्ति पलकर बड़ा ही नहीं होता अपितु वह उससे संस्कार पाकर सामाजिक भी बनता है। समाज में ही रहकर उसके विचारों का जन्म होता है। उसकी जीवन शैली, कार्य पद्धति, आदि इसी समाज में तय होती है। संभवतरू बड़ा होकर व्यक्ति किस प्रकार के व्यवसाय का चुनाव करेगा, यह भी समाज से निर्धारित होता है।

यह समाज मां के समान है जिसके बिना बालक का पालन–पोषण दुष्कर है। व्यक्ति उसकी गोद में ही प्रेम और दुलार से बड़ा होता है। कविता की इन पंक्तियों में कवि ने समाज की सत्ता को स्वीकार ही नहीं किया वरन जीवन के लिए उसे आवश्यक भी माना है। वह जानता है कि निजता में जीवन का निर्वाह नहीं है। इसलिए वह समाज की ओर उन्मुख रहता है– अहं अंतर्गुहावासी ! स्व–रति ! क्या मैं चीन्हता कोई न दूजी राह ? जानता क्या नहीं निज में बद्ध होकर है नहीं निर्वाह ? क्षुद्र नलकी में समाता है कहीं बेथाह मुक्त जीवन की सक्रिय अभिव्यंजना का तेज – दीप्त प्रवाह ! जानता हूं नहीं सकुचा हूं कभी समवाय को देने स्वयं का दान, विश्व–जन की अर्चना में नहीं बाधक था कभी इस व्यष्टि का अभिमान ! कांति अणु की है सदा गुरु पुंज का सम्मान ।

बना हूं कर्ता इसी से कहूं– मेरी चाह मेरी दाहमेरा खेद और उछाह रू अज्ञेय का व्यक्ति समाज के दाय के लिए न केवल कृतज्ञ है। वह समाज को अपना कुछ सौंपने में संकोच नहीं करता है। अपनी निजता और लघुता की सफलता समष्टि के सम्मान से ही है। विश्व के कल्याण में वह कभी भी बाधक नहीं है। अज्ञेय का व्यष्टि समाज की चिंता करने वाला व्यक्ति है। वह समाज की भलाई चाहता है । अतरू इसमें हो रहे व्यवहार के प्रति भी सजग है। समाज में घटित हो रहे व्यवहारों से व्यक्ति उदासीन रह भी नहीं सकता क्योंकि वह उस का महत्वपूर्ण अंग है। वह इसीलिए समाज में घटित हो रहे अत्याचारों को दूर करना चाहता है। वे वर्ग भेद को भी समाज से मिटा देना चाहते हैं और उसे वर्ग भेद रहित बनाना चाहते हैं । कवि की दृष्टि में समाज में असमानता ठीक नहीं है। प्रत्येक के साथ वे न्याय चाहते हैं और समाज के प्रत्येक उस व्यक्ति के साथ हैं जो असहाय है, पीड़ित है और कमजोर है। अज्ञेय की सामाजिक दृष्टि समाज

के उस हिस्से पर टिकती है, जहां वे व्यथित की व्यथा को समझते हैं। वे कहते हैं– यह जो कज्जल–पुता खानों में उतरता है पर चमाचम विमानों को आकाश में उड़ाता है।

अज्ञेय की दृष्टि में व्यक्ति के लिए स्वाधीनता मानव होने की पहचान है। स्वाधीनता मानव मूल्य है, मानव होने का प्रमाण है। अपने से बड़ा कुछ करने की उसमें जो योग्यता है वहीं उसे स्वाधीन करती है। अज्ञेय यह भी मानते हैं कि व्यक्ति अपनी इसी स्वातंर्त्य – अनुभूति के कारण अलौकिक सत्ता से भी जुड़ गया।

अज्ञेय का कवि मन उस असीम सत्ता से अपना संबंध जोड़ने के लिए प्रयत्न शील है, जिसे वह ईश्वर नहीं कहता। उसे वह देख नहीं पाता फिर भी उसे वह अपने अंदर अनुभव करता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने होने की अनुभूति होती है। व्यक्ति अपने जीवन के लिए, आगे बढ़ने के लिए और अपने विकास के लिए प्रकृति के साथ सामंजस्य का प्रयत्न करता है। उसके स्वतन्त्र होने की यही पहचान है। उसे इस स्वाधीनता के लिए अनेक प्रयत्न करने पड़ते हैं। क्रिस्टोफर कॉडवेल ने जगत और मैं के विषय में विचार करते हुए यह स्वीकार किया है कि मनुष्य प्रकृति के साथ अपने संघर्ष में जिस चीज की तलाश करता है, वह है स्वतन्त्रता। यह स्वतन्त्रता चूंकि क्रिया के बिना अर्जित नहीं की जा सकती इसलिए वह महज चिंतन की स्वतन्त्रता नहीं है। इसे हासिल करने के लिए मनुष्य अपने भीतर सिमटकर नहीं रह जाता कि जो भी होता है होने दो। जैसे कला की स्वतः स्फूर्तता श्रमजन्य क्रिया का परिणाम है, उसी तरह स्वतन्त्रता की भी अपनी कीमत चिर सतर्कता नहीं अपितु सतत श्रम है ।

आशय यह है कि व्यक्ति केवल सोचता है इसलिए अपनी स्वतन्त्रता का अनुभव नहीं करता बल्कि उसके लिए उसे संघर्ष भी करना पड़ता है। अज्ञेय की कविताओं में भी इस प्रकार प्रकार के विचार मिलते हैं, जहां वह वह अनुभव करता है कि उसका जीवन ओस की बूंदों के समान और कर्म जोते हुए खेत की तरह हो और उसमें वे अपने कर्मों के नए बीज बो सकें। मेरा कर्म मेरे गले का जूआ नहीं, वह जोती हुई भूमि बन जाए जिस में मुझे नया बीज बोना है । इन पंक्तियों में कवि ओस की बूंदों की तरह सूर्य से ऊर्जा प्राप्त कर स्वयं प्रकाश विकरित करना चाहता है और अपने कर्म में एक अबाध गति चाहता है। एक स्वतंत्र चेतना ही व्यक्ति को ऐसे चिंतन के लिए व्यक्ति एक सचेतन प्राणी है। प्रेरित कर सकती है। वह चिंतन करता है क्योंकि उसे अपने सत्व की अनुभूति होती है। परंतु उसकी यह स्वतन्त्रता उसकी अपनी ही नहीं है, वह दूसरों को भी स्वतंत्र करता है।

विचार–विमर्श

अज्ञेय कहते हैं कि स्वाधीनता की सच्ची कसौटी में नहीं ममेतर है। ममेतर के दर्पण में ही मुझे मेरी अपनी अस्मिता का सच्चा प्रतिबिंब दिख सकता है। शायद मसीही धर्म ग्रंथ में जब यह कहा गया कि ईश्वर ने अपनी प्रतिच्छवि में मानव को बनाया तब आशय यही था कि ईश्वर को भी अपने को पहचानने के लिए उस प्रतिच्छवि की जरूरत महसूस हुई। व्यक्ति को उसकी स्वाधीनता ही कर्म के लिए प्रेरणा देती है। उसकी स्वाधीनता का यही प्रमाण है कि अपनी मुक्ति के साथ उसका कर्म दूसरों को भी मुक्त करता है। इस संदर्भ में अज्ञेय ने गौतम बुद्ध का उल्लेख किया है– उस बोधिसत्व की कथा कई वर्षों बाद सुनी जिसने मानव मात्र की मुक्ति के लिए स्वयं अपनी मुक्ति का उत्सर्ग कर दिया था। और यह तो इसके भी कुछ वर्षों बाद समझ में आया कि यह उत्सर्ग ही सच्चा और एकमात्र स्वाधीन कर्म है।...बोधिसत्व का स्वाधीन कर्म, उसका स्वतंत्र वरण एक ऐसा कर्म था जिसके द्वारा स्वाधीनता अपने आप में एक अनिवार्यता बन जाती है। २१ व्यक्ति अपनी सचेतना के कारण ही अपने कर्मों का चुनाव करता है। कर्मों का वरण किया जाना उसके सत्व का परिचायक है। जब व्यक्ति का सत्व है तभी वह अपने कर्मों का चुनाव करने में समर्थ है। अज्ञेय के इस विचार पर अस्तित्ववादी प्रभाव दिखाई देता है। अस्तित्ववादी विचारक सार्त्र के वरण के संबंधी विचार के विषय में रमेश की ऋषिकल्प का कथन दृष्टव्य है– स्वतन्त्रता का वरण करना मानव का सत्व पक्ष है जिसके द्वारा विश्व में निषेधियों की तो कलई खोलता है ही बल्कि अपने संबंध में भी निषेधात्मक दृष्टिकोण बना सकता है। यह चर्चा करते हुए हमें ज्यां पाल सार्त्र की याद आती है। जिनके अनुसार संचेतना वह सत्व है जिसका धर्म है अपने सत्व के प्रति सचेत होना। सार्त्र लिखते हैं– होने की चेतना चेतना का होना है। इसका मतलब यह हुआ कि सचेतन तत्व के कारण ही मनुष्य स्वतन्त्रता का वरण करता है। वैयक्तिक चेतना में मैं की अभिव्यक्ति होती है। मैं हूं, यह मेरा है, यह मेरा नहीं है आदि का प्रयोग जब व्यक्ति करता है तो उसका अहं भाव प्रकट होता है। अस्तित्ववाद भी मानता है कि व्यक्ति में जो चेतना है वह अहं को प्रकट करती है। सार्त्र के चेतना संबंधी विचार के संबंध में मस्तराम कपूर का मत है– सार्त्र मानव चेतना को निर्वैयक्तिक चेतना और अहं (ईगो) की पृथक सत्ता नहीं मानते। वे मानव चेतना के वैयक्तिक रूप को अहं कहते हैं। मेरे पन का भाव चेतना में हमेशा मौजूद रहता है और इस दुनिया के संबंध में मेरे पन का भाव इस अर्थ में होता है कि दुनिया मेरी संभावनाओं से भरी है और प्रत्येक संभावना की चेतना आत्म चेतना अर्थात मैं हूं । अज्ञेय के कवि में इस मैं की अभिव्यक्ति बार–बार हुई है।

अज्ञेय के काव्य में व्यक्ति के प्रत्येक पहलू पर विचार हुआ है। अज्ञेय का व्यक्ति कहीं अपने आप से ही अलग हो गया है। अज्ञेय व्यक्ति के व्यक्तित्व को महत्ता प्रदान करते हैं। उनका मत है कि व्यक्तित्व का बनना ही मनुष्य का मनुष्य बनना है । ३३ उनकी कविताओं में व्यक्तित्व खोज की जिज्ञासा दिखाई देती

है– यों मत छोड़ दो मुझे, सागर कहीं मुझे तोड़ दो, सागर कहीं मुझे तोड़ दो! मेरी दीठ को और मेरे हिए को, मेरी वासना को और मेरे मन को, मेरे कर्म को और मेरे मर्म को, मेरे चाहे को और मेरे जिए को मुझको और मुझको और मुझको कहीं मुझसे जोड़ दो! अज्ञेय मानते हैं कि व्यक्तित्व से ही व्यक्ति को सही मायने में समझा जा सकता है। व्यक्ति अपने मैं को पहचानता है। इसलिए वह मानवेतर प्राणियों से भिन्न है। अपनी इसी मैं की पहचान के कारण वह समाज की महत्वपूर्ण इकाई है। इस संबंध में उनका कथन है कि जब तक व्यक्तित्व नहीं बनता तब तक तो पशु से मनुष्य को अलग करने वाली स्थिति ही पूरी नहीं बनती। वह मैं असामाजिक नहीं है लेकिन एक बड़ी स्पष्ट निरूपित इकाई अवश्य है । अज्ञेय व्यक्ति के सकारात्मक और निराशावादी मनोभावों को प्रकट करने में सफल हुए हैं। अज्ञेय की व्यक्ति में अटूट आस्था है। वे कहते हैं– मार्ग कभी धुंधला हो, दिक्चक्र थोड़े ही खो जाता है ज्ञान अधूरा है, सही, विवेक थोड़े ही सो जाता है ? आस्था न कांपे, मानव फिर मिट्टी का भी देवता हो जाता है

निष्कर्ष

अज्ञेय मानते हैं कि कितनी भी कठिन परिस्थितियां क्यों ना हो यदि व्यक्ति की आस्था समाप्त न हो या कमजोर न पड़े तो वह विषम से विषम स्थिति का सामना कर सकता है। वास्तव में अज्ञेय के काव्य में व्यक्ति का प्रमुख स्थान है और उनकी कविताएं व्यक्ति की जीवन में आस्था का प्रतीक हैं। वे कहते हैं – वे जिन्होंने धरती में विश्वास नहीं खोया, जिन्होंने जीवन में आस्था नहीं खोयी, जिन के घर उन पहलों ने नष्ट किए, महासागर में डुबोए रू पर जिन्होंने अपनी जिजीविषा घृणा के परनाले में नहीं डुबोई उनकी डोंगियां फिर इन तरंगों पर तिरेंगी । अज्ञेय का काव्य व्यक्ति की इयत्ता को महत्त्वपूर्ण मानता है परंतु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे उसे समाज से अलग मानते हैं। उनके काव्य में समाज की उपेक्षा नहीं की गई। उनके काव्य में समाज संबंधी विचारों को समझने के लिए उनकी सामाजिक दृष्टि को समझना समीचीन है

संदर्भ सूची

1. अज्ञेय, कृष्णदत्त पालीवाल, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, २०१२ (शक १९३३)
2. अज्ञेयरू स्मृतियों के झरोखे से, डॉ नीलम ऋषिकल्प, कल्पना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम, २०१२
3. शिखर से सागर तक (अज्ञेय की जीवन यात्रा), रामकमल राय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम १९८•

4. वन का छंद, विद्यानिवास मिश्र, (गिरिवर मिश्र, गणेश शुक्ल – संचयन तथा संपादन) वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम, २००८

5. अज्ञेय और इलियट, अरुण भारद्वाज, साहित्य सहकार, दिल्ली, द्वितीय, २००१

6. अज्ञेय एक अध्ययन, भोला भाई पटेल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २००२

7. अज्ञेयरू कवि और काव्य, डॉ राजेन्द्र प्रसाद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय, २००२

8. शेष– निःषेश, रामधारी सिंह दिनकर, पूर्वोदय प्रकाशन, प्रथम, १९८५ अज्ञेय के सृजन में जापान, रीतारानी पाल, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम – २००२

9. अपने – अपने अज्ञेय – २, ओम थानवी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, २०११

10. अज्ञेय से साक्षात्कार, कृष्णदत्त पालीवाल, आर्य प्रकाशन मंडल, दिल्ली, २०१२